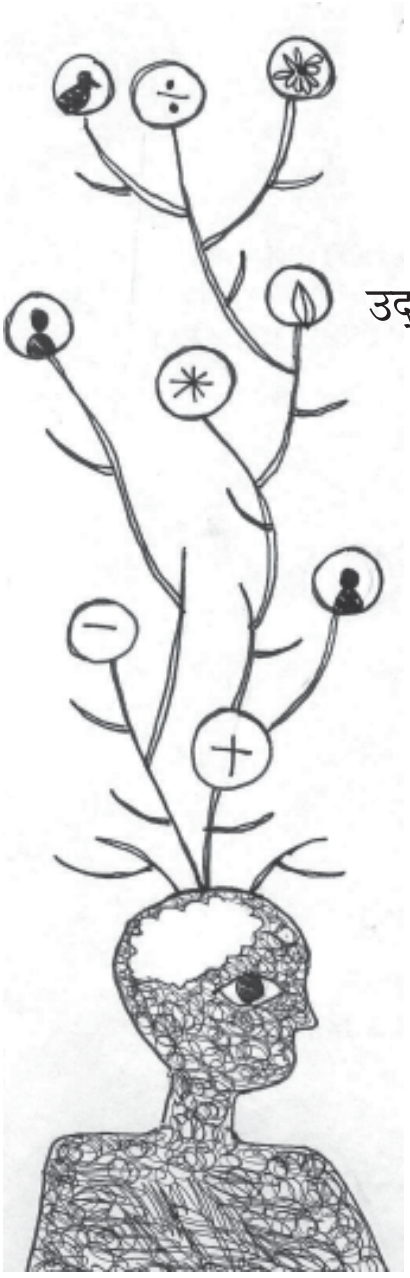

स्थान-आधारित शिक्षा

उद्देश्य से क्रियान्वयन तक

तेजस्वी शिवानन्द

सेंटर फॉर लर्निंग (सीएफएल) इस आधार पर बना और काम करता आया है कि हम अपने जीवन और रहन-सहन से जुड़े रीति-रिवाज़ों और उनके स्वरूपों को बुनियादी रूप से परख सकते हैं और उन्हें चुनौती दे सकते हैं। यदि इस आधार को किसी शैक्षणिक सन्दर्भ में रूपान्तरित करते हैं, तो उसमें उन मुश्किल सवालों को भी शामिल कर सकते हैं जो हम उस वैश्विक पर्यावरण संकट की जड़ों के बारे में पूछते हैं, जिससे हम गुज़र रहे हैं। यह अनिवार्य भी है कि हम ऐसे कठोर सवाल पूछें क्योंकि हम उन सारी ज़िन्दगियों के लिए भी ज़िम्मेदार हैं जिनके साथ हम अपने रहने की जगह और संसाधनों को बाँटते हैं। ज़िम्मेदारी के इस एहसास के अभाव में वैश्विक त्रासदी शाब्दिक रूप से भी और बाकी अर्थों में भी, निश्चित है।

ग्रामीण क्षेत्र में युवाओं को शिक्षित करने के दौरान, हमने देखा है कि आप इन सवालों को तब गम्भीरता से

उठाने की कोशिश कर सकते हैं, जब आपका उस जगह से गहरा रिश्ता होता है जहाँ आप रहते हैं। आप अपने पड़ोस को कितने अच्छे से जानते हैं; कौन कहाँ रहता है, वे क्या करते हैं, उनकी समस्याएँ - लोगों के जीवन की, पेड़ों के जीवन की, उल्लुओं के जीवन की, कीड़ों के जीवन की - क्या हैं। इस तरह के वातावरण में कई साल बिताने के बाद, जहाँ ऐसा सम्बन्ध विकसित करने के अनेक मौके आसानी से उपलब्ध होते हैं, एक युवा अक्सर प्राकृतिक और मानवीय, दोनों तरह के सम्बन्धों के बीच में रहने को मूल्यवान पाता है। इसी मूल्य में सम्भवतः समानता, सहानुभूति की भावनाएँ और सह-अस्तित्व की पहचान मौजूद होती हैं। यह सीएफएल में उठाए जाने वाले एक प्रमुख प्रश्न की जड़ में जाता है - इस पागल, मतलबी दुनिया में हम किस तरह विवेक के साथ जी सकते हैं?

हमारे घरों, स्थानीय परिवेशों, और साथ ही वैश्विक स्थिति के बारे में सोचने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने वाले पाठ्यक्रमों और ढाँचों में सहयोग करने के लिए इसी तरह की साझी सोच ज़रूरी है। इस सोच की ज़रूरत इसलिए है क्योंकि स्थिति को भलीभाँति समझ लेने से अपने परिवेश और वैश्विक स्थिति को लेकर भावनात्मक जुड़ाव वाला संरक्षणात्मक नज़रिया विकसित होता है।

हमने देखा है कि अधिकांश शैक्षणिक सन्दर्भों में पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं की नेकनीयत वाली बौद्धिक समझ तो प्रदान की जाती है, पर ऐसी समस्याओं की निरन्तर बनी रहने वाली प्रकृति पर विरले ही ध्यान दिया जाता है। समस्या की ऐसी लगातार बनी रहने वाली प्रकृति का एक उदाहरण अपशिष्ट

पदार्थों का निरन्तर पैदा किया जाना और उन्हें ज़मीन, पानी और हवा में डाला जाना है - इसके भलीभाँति पहचाने जाने वाले बुरे प्रभावों के बावजूद इसे कभी रोका नहीं जाता, और कभी कम भी नहीं किया जाता। हमें लगता है कि इस समस्या के बड़े पैमाने को देखते हुए उसके समाधान का प्रयास-भर करने के लिए भी इन मुद्दों के साथ एक गहरा भावनात्मक रिश्ता होना ज़रूरी है। इसके लिए खुद अपने घर या पिछवाड़े के प्रति एक भावनात्मक सम्बन्ध विकसित करने से ज़्यादा बेहतर तरीका और क्या हो सकता है?

स्थान-आधारित शिक्षा की ज़रूरत के पीछे हमारी जो सैद्धान्तिक सोच है, उसे मैं आपके साथ बाँटना चाहूँगा। हमारे प्रयोग के अनुभवों और उसमें आने वाली चुनौतियों को भी मैं आपके समक्ष रखूँगा। हम स्थान-आधारित शिक्षा के लिए सीएफएल में प्रयोग में लाए जा रहे पाठ्यक्रम और गतिविधियों की रूपरेखा को भी सामने रखेंगे और बताएँगे कि कैसे इसे किसी भी परिवेश के स्कूल के लिए प्रासंगिक बनाया जा सकता है। इस पाठ्यक्रम के माध्यम से हम भूमि, उसके भूविज्ञान, वनों, जल विभाजक, बस्तियों और लोगों की एक समझ विकसित करते हैं। और साथ ही भूमि पर काम करके और उसकी देखभाल करके - वनस्पतियों की जैविक बागबानी, जल प्रबन्धन, भूमि को पौधों से सजाना - उसके साथ जुड़ने के ऐसे कई अन्य तरीकों के द्वारा भी भूमि की गहरी समझ विकसित करते हैं। हमारे दृष्टिकोण से यह ज़रूरी नहीं कि ऐसा करने के लिए हम सभी के पास सीएफएल परिसर जैसे बहुत हरे-भरे विशाल भूखण्ड होने चाहिए। यह किसी भीड़-भाड़ वाले शहर में रहने वाले किसी बच्चे के घर में भी हो सकता है। क्यों नहीं?

उद्देश्य को पाठ्यक्रम और क्रियान्वयन में तब्दील करना ऐसी सतत चुनौती मालूम होती है जिसका सामना हमें स्कूलों में करना पड़ता है, और 'सेंटर फॉर लर्निंग' में चलने वाली इस प्रक्रिया के लिए मेरे प्रश्नों में प्रकृति और हमारे निवास स्थान से जुड़े हुए प्रश्न भी अपरिहार्य रूप से शामिल हैं।

कौन से प्रश्न?

'क्या यह असली साँप है?' यह एक ऐसा सवाल है जो सीएफएल में साँप को हाथों में लिए एक बच्चे की तस्वीर देखकर आश्चर्यचकित होकर आगन्तुक अनिवार्य रूप से पूछते हैं। अक्सर इस शुरुआती प्रश्न के बाद प्रश्नों की बाढ़ आ जाती हैः क्या इन बच्चों को साँपों से डर नहीं लगता? क्या कभी साँपों द्वारा बच्चों को काटने की कोई घटनाएँ हुई हैं? और इसी तरह के और भी कई सारे, अक्सर दिमाग खराब करने वाले प्रश्न! मैं अपार्टमेंट में रहने वाले ऐसे उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे बच्चों के बारे में सोचता

हूँ जिनका साँपों से कभी वास्ता नहीं पड़ा होगा और जो बस एक दस्तूर की तरह इन संकोची जीवों को लेकर विकृत भय पाले रहते हैं, यह भय छिपकलियों, कीड़ों, कुकुरमुत्तों और यहाँ तक कि बड़े फूलों तक को लेकर रहता है! हालाँकि विषैली प्रजातियों का भय हमें विकास की हमारी विरासत से मिला है, लेकिन प्रकृति में ऐसे भी कई साँप हैं जो शान्त प्रकृति के हैं, सुन्दर हैं, और स्थानीय समुदाय के महत्वपूर्ण सदस्य हैं।

हम में से कितने लोग अपने आसपास की प्राकृतिक दुनिया में रोज़ होने वाले क्रियाकलापों के प्रति सहज रहते हैं या उनसे परिचित रहते हैं? जिन शहरी इमारतों में हम रहते हैं वे जीवन से सराबोर हैं, पर हम उसके प्रति आम तौर पर बेपरवाह होते हैं। अपार्टमेंट वाले घरों और स्कूलों के मानकों को देखते हुए ऐसा लगता है कि प्राकृतिक दुनिया की अल्पकालिक आकस्मिकता और दीर्घकालिक अजनबीपन हम में से कई लोगों के भीतर भय पैदा करते हैं। सीखने की प्रक्रिया में भय की उपस्थिति को समझने में रुचि रखने वाले एक शिक्षक होने के नाते, मुझे उन प्रक्रियाओं को जानने में दिलचस्पी है जो भय का कारण बनती हैं। ऐसा लगता है कि प्रकृति भय को लेकर की जाने वाली जन्मजात और सिखाई-पढ़ाई गई प्रतिक्रियाओं के भण्डारगृह की कलई खोल सकती है, और प्रकृति के साथ नज़दीकी सम्पर्क हमें भय की इन हरकतों को समझने में मदद कर सकता है। भय की पकड़ कमज़ोर पड़ सकती है - जैसा कि मैंने अनेक बच्चों के साथ होते देखा है - और इस पकड़ के कमज़ोर होने से बच्चों को सीखने में मदद मिल सकती है। क्या प्रकृति के साथ रहने से भय का भाव समाप्त हो सकता है? यह मुझे नहीं पता।

मैंने कुछ बच्चों में, और अपने आप में, प्रकृति के करामातों में खो जाने की ज़बरदस्त प्रवृत्ति देखी है। फूलों, पंछियों और कीड़ों को निहारने में पूरी तरह डूबे हुए अनेक घण्टे बीत जाते हैं और आत्मसंयम हमारे अस्तित्व का प्रभावी स्वरूप बन जाता है। उदाहरण के लिए, कोई पक्षी-प्रेमी दर्शक अपनी परिन्दों की सूची की लम्बाई से आत्मसन्तुष्ट हो सकता है। मैं अक्सर सीखने की अन्य प्रेरणा के अभाव में किसी भी चीज़ को बस 'सीखने के लिए सीखना' की बेढंगी व्यवस्था को

लेकर सोच में पड़ जाता हूँ। किसी शिक्षक को दैनिक रूप से एक महत्वपूर्ण सवाल से जूझना पड़ता है – सीखने के प्रति बच्चों की प्रेरणा और साथ ही उसके प्रति अवरोध की जड़ों को लेकर।

टेलीविज़न, वृत्तचित्रों और इंटरनेट ने दुनिया को हमारे दरवाज़े तक पहुँचा दिया है; उनके द्वारा कलाबाज़ियों और जोखिम भरी मुठभेड़ों की भौचक्का कर देने वाली ृंखला के रूप में जीती-जागती दुनिया के प्रस्तुतिकरण ने शायद हमारे आसपास की दुनिया को ऐसे सुस्त, उबाऊ भूदृश्य में तब्दील कर दिया है जहाँ ज़्यादा कुछ नहीं होता। प्रकृति के साथ आनुभविक सम्पर्क रखने से हमें इस दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा; मुठभेड़ें व नज़दीकी मुलाकातें प्रतिदिन के स्तर पर हो सकती हैं, भले ही वे बहुत चमत्कारिक न हों। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए ब्लू टाइगर (नीली और काली) तितलियों के झुण्ड का कभी-कभार दिखने वाला बहुत ही बढ़िया दृश्य, किसी तूफानी रात में चमकीले कन्दील के चारों तरफ मण्डराते चकित कर देने वाले पतंगे, और गर्मियों में बहुत थोड़े-से समय के लिए पलाश के पेड़ों पर खिलने वाले चटक लाल फूल, अन्यथा दिखाई देने वाले उन सामान्य, दिलचस्प रूपों और प्रक्रियाओं में थोड़ा विराम लगाते हैं जिनमें कलियों और फूलों का रोज़ाना खिलना और अण्डे-टैडपोल-मेंढक के सामयिक चक्र शामिल रहते हैं।

कुछ चेतावनियाँ और निर्देश

क्या ये प्रकृति से की जाने वाली अवास्तविक अपेक्षाएँ हैं? भले ही यह शिक्षा में प्रकृति की भूमिका का विस्तार करने के लिए किसी फलसफे की रूपरेखा बनाने का आधा प्रयास ही हो, फिर भी हम प्रकृति के साथ नज़दीकी मुलाकातों के उस असली मूल्य के बारे में आश्वस्त हैं जो कई बच्चों को प्राप्त होता है। हमने विद्यार्थियों को प्रकृति के साथ अपने रिश्ते की ताकत पर गम्भीर भावनात्मक संकटों से बचते देखा है; रिश्तों के जाल में गम्भीरता से फँसे हुए युवा लोग प्रकृति के सानिध्य में तनाव-रहित महसूस कर सकते हैं: प्रकृति वह स्थान होता है जहाँ ये खुद को आलोचनाओं और दबावों से मुक्त महसूस करते हैं। क्या प्रकृति मनुष्य के मनोवैज्ञानिक रोगों और तकलीफों का इलाज हो सकती है? इसकी सम्भावना शायद नहीं है। पर यह मन की विभिन्न हलचलों को आईना दिखाने के लिए मूल्यवान साबित हो सकती है।

एक शिक्षक के रूप में जब मैं बच्चों के और प्रकृति के साथ होता हूँ तो अक्सर भ्रमित रहता हूँ। मैंने अक्सर खुद से यह पूछा है: क्या मैं उन्हें प्रकृति को ध्यान से देखना सिखा सकता हूँ? क्या यह मुक्त अवलोकन होना चाहिए या किसी को इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए? क्या प्रकृति का अवलोकन करने का अर्थ कोई कौशल हासिल करना है? क्या इसका

अर्थ ऐसे अन्य किसी व्यक्ति द्वारा हस्तक्षेप करना होता है जो प्रशिक्षित हो? यह सम्भवतः किसी विशेष कौशल - दूरबीन पकड़ना, रेखाचित्र खींचने और टिप्पणियाँ लिखने में सुझाव देना, पौधों, पक्षियों, कीड़ों के नाम बताना - के लिए मार्गदर्शन के रूप में हस्तक्षेप करने में, और एक सामान्य, साझे ढंग से इस अनुभव का दस्तावेज़ बनाने और उसे समझने में उपयोगी होगा। अक्सर यह भी महसूस किया जाता है कि बच्चों के सामने जो भी कार्य आए उसे उन्हें स्वयं अपने हिसाब से करना चाहिए, और उनको निर्देशित करते रहना एक तरह से उनके अनुभव को बाँधना और संकुचित करना होगा। बच्चों से प्राकृतिक दुनिया का परिचय कराने के लिए शायद एक खुली, मार्गदर्शित योजना अपनाना मध्यम-मार्ग होगा!

स्थान का बोध

सीएफएल में अलग-अलग उम्र के बच्चों के साथ काम करते हुए हमने बीते वर्षों में प्रकृति के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित करने की कई योजनाएँ बनाई हैं, और बच्चों के जिज्ञासु दिमाग के लिए प्रकृति के साथ जुड़ी गति-विधियों के पाठ्यक्रम का एक प्रारूप तैयार किया है। वायनाड, केरल स्थित गुरुकुल बॉटैनिकल सैंक्चुअरी के साथ एक लम्बा और लाभदायक जुड़ाव इनमें से कई गतिविधियों के लिए एक आरम्भिक तथा स्थाई वैचारिक स्रोत रहा है।

कम उम्र के विद्यार्थियों के लिए हमने निम्नलिखित सम्भावनाएँ टटोलीं: प्राकृतिक परिवेश में सुकून महसूस करना; प्राकृतिक परिवेश में शान्त रहने की क्षमता; प्रकृति में दिखने वाले सरल स्वरूपों को पहचानना; और संवेदी इन्द्रियों पर आधारित खोजबीन - देखकर, सुनकर, सूँघकर, चखकर, छूकर, स्थान का बोध। पाठ्यक्रम के ये लक्ष्य प्रकृति के साथ सम्पर्क में रहने के कुछ माध्यमों और तरीकों को सामने रखते हैं, और बाहर की ओर देखने, शान्त रहने, और सीधे अनुभव करने के इरादों से जुड़ जाते हैं।

बीते सालों में बच्चों के साथ काम करते हुए हमने पाया है कि प्राकृतिक दुनिया से नाता जोड़ने के लिए स्थानीय भूदृश्य और जीवन के साथ अन्तरंग रिश्ता बनाना अत्यावश्यक है। चट्टानी और वनाच्छादित भूदृश्य से घिरे कई एकड़ में फैले हरे-भरे परिसर में हमारे पास इस स्थान के बोध को विकसित करने का श्रेष्ठ स्रोत है। सबसे छोटी उम्र के विद्यार्थियों के साथ, ये गतिविधियाँ चुपचाप रहते हुए प्रकृति के साये में चहलकदमी करते हुए एकान्त समय बिताने, प्रकृति की किसी पत्रिका में चित्र बनाने, और ऐन्द्रिक अन्वेषण के सरल अभ्यासों का रूप ले लेती हैं। उनके अपने पसन्दीदा स्थान होते हैं जहाँ वे झुण्ड बनाकर खेलते हैं। जब हम बच्चों से सवाल करते हैं तो पाते हैं कि किसी स्थान से उनका परिचय उस स्थान पर घट रहे बदलावों

– शायद किसी नई इल्ली, नए पक्षी, फूल या फल का दिखाई देना – की जानकारी तक फैला रहता है। परिसर के बाहर पैदल घूमते वक्त जब वे चट्टानों पर कठिनाई से चढ़ते-खेलते हैं तो उनका कोनों और दरारों में छिपे जीवन के विभिन्न रूपों – बरगद के पौधे, गुलमेंहदी, फर्न पौधे, उल्लू, गिरगिट, गैको छिपकलियाँ, बामनी और साँप – से सामना होता है। कोई नई चीज़ देखने पर वे अक्सर रोमांचित हो जाते हैं, जैसे कोई मरा हुआ हेलीकॉप्टर कीड़ा (ड्रैगनफ्लाई) या तितली, या ग्लोरिओसा लिली के फूल, और फिर वे इन जीव-जन्तुओं के स्वरूपों और कार्यों से सम्बन्धित कई सवाल उठाते हैं, जिनमें से कुछ उनकी उम्र के हिसाब से काफी गूढ़ होते हैं। परिसर के भीतर और बाहर की अपनी पसन्दीदा चट्टानों और जगहों के चारों ओर के जीवन, जैसे पेड़, फर्न, पक्षी, कीड़े आदि के साथ प्रायः उनका विस्तृत परिचय होता है।

उम्र के साथ प्रश्न परिष्कृत होते जाते हैं, और उनमें चीज़ों के अन्तर्सम्बन्धों की पड़ताल करने के अप्रत्यक्ष पारिस्थितिक स्वर भी शामिल हो जाते हैं। प्रजातियों की पहचान, उनके वर्गीकरण और चट्टानों पर उनके सवाल जारी रहते हैं, तथा और पक्के हो जाते हैं, और सीखने की यह प्रक्रिया ढाई सौ करोड़ सालों से भी ज़्यादा पुराने ग्रेनाइट से बने प्राचीन इलाके को दस से बारह साल के बच्चों के लिए एक लुभावनी जगह बना देती है। ऐसी एक प्राचीन भूमि का खयाल अक्सर चौंका देने वाला होता है जहाँ लगातार बसाहट रही हो। अलग-अलग मौसम में इन स्थलों पर पुनः जाकर और परिसर के आवासों की पड़ताल

करके, लम्बी पैदल यात्राओं और पास के जंगलों में डेरा डाल इस भूदृश्य का सर्वेक्षण करके, और रेखाचित्र बनाकर हम स्थान के इस बोध को और प्रखर बनाते हैं। बच्चे स्कूल के एक्वेरियम और कुत्तों का खयाल रखने के कामों में भी भागीदारी करते हैं। जीवन के अन्य रूपों से सम्बन्ध बनाने की प्रक्रिया में, हम आशा करते हैं वे जीवन और जीवित प्राणियों के साझा सूत्रों को पहचान सकेंगे।

किशोरावस्था में उनकी खुद की पहचान उभरना शुरू हो जाती है और इसके साथ ही प्राकृतिक दुनिया को लेकर विद्यार्थियों की रुचि में या तो गिरावट आ जाती है या वह और बढ़ जाती है। उम्र में बड़े काफी सारे विद्यार्थी अब तक बड़े जोशीले पक्षी-प्रेमी या तितली-प्रेमी बन चुकते हैं, पक्षी और तितलियाँ इस परिवेश में विविधता के सबसे भड़कीले और प्रत्यक्ष रूप हैं। कई बच्चों का मौसमी जंगली फूलों और सरिसृपों की विभिन्न प्रजातियों के प्रति आकर्षण पनप जाता है। ये विद्यार्थी परिसर की और आसपास के जंगलों की जैव विविधता का सर्वेक्षण करते हैं, और विस्तृत सूचियों, जीवन वृत्तों के अध्ययन और मौसमी बदलावों के वृत्तान्तों के माध्यम से वहाँ के जीवन की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करने में अपना योगदान देते हैं। परिसर के भागों या आसपास के परिवेश के कृषि-वनों की पच्चीकारी (mosaic) का मानचित्रण करने जैसे अभ्यास उन्हें परिसर और उससे बाहर के उन हिस्सों में जाने का मौका देते हैं जिन पर वे रोज़ाना ध्यान नहीं देते। वे मानवीय प्रभुत्व वाले संशोधित भूदृश्यों में जीवन की समस्याओं को बड़े पैमाने पर सामने लाते हैं। भूदृश्य के विभिन्न पहलू - वन, जल-विभाजक, ग्रामीण और शहरी बस्तियाँ - और उनके अन्तर्सम्बन्ध भी अध्ययन के प्रश्न बन सकते हैं। स्थानीय प्रश्न बड़े पैमाने का रूप ले सकते हैं, और हमारा सामान्य अध्ययन-कार्यक्रम इसी व्यापक सन्दर्भ में सामाजिक और पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों पर ध्यान देता है। आजीविका, मानवाधिकार, बड़े पैमाने पर होने वाले विस्थापन और प्रवासन (migration), खाद्य सुरक्षा, खेती की भूमियों द्वारा झेली जाने वाली चुनौतियाँ, मीठे पानी के भविष्य के सवाल इस उम्र में महत्वपूर्ण सवाल बन जाते हैं। पर्यावरण के साथ मानव समाज की पारस्परिक क्रिया की जटिलता, और उनके बीच के तालमेल तथा गड़बड़ियों की गहराई से पड़ताल की जाती है। कइयों के लिए, भूमि की गहरी जानकारी, उसके प्रति प्रेम और लगाव की गहराई में तब्दील हो जाती है।

सभी उम्र के विद्यार्थी परिसर से दूर भ्रमण के लिए जाते हैं, भारत के अन्य भागों के निर्जन इलाकों में जाकर वहाँ रहने और काम करने वाले लोगों से मिलते हैं। पश्चिमी घाट, कच्छ, बस्तर, हिमालय और अरुणाचल प्रदेश वे कुछ स्थान हैं जहाँ ये विद्यार्थी गए

हैं। सबसे बड़े कुछ बच्चे कुछ हफ्तों से लेकर कई महीनों तक का समय इन स्थानों पर रहने और काम करने वाले लोगों के प्रशिक्षु बनकर बिताते हैं।

कुछ सवाल रह जाते हैं...

थोड़े-से, मुख्यतः शहरी, मध्यम-वर्गीय बच्चों को पढ़ाते हुए, मेरे सामने अक्सर यह सवाल आकर खड़ा हो जाता हैः इस प्रकृति शिक्षा के पीछे क्या प्रेरणा है? हमारी इस तेज़ी से बदलती हुई दुनिया में, जहाँ सभी स्तरों पर - सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक - ज़बर्दस्त कार्यवाही की आवश्यकता है, ऐसे वक्त में हमारे कार्यों के प्रभावों की गहरी समझ और भूमि की परवाह करने के रवैये की अत्यधिक ज़रूरत है। और यहीं पर सीएफएल जैसे स्कूलों के प्रकृति शिक्षा कार्यक्रम गहरा प्रभाव डाल सकते हैं। एक और सवाल जो अक्सर पूछा जाता हैः क्या ये कार्यक्रम और बड़े भौगोलिक विस्तारों तक फैलाए जा सकते हैं? अगर नीति निर्माताओं और शिक्षक प्रशिक्षकों/शिक्षकों में पर्याप्त रुचि हो तो शायद वे ऐसा कर सकते हैं। उपलब्धियाँ और सफलताएँ हासिल करने जैसे बाहरी प्रेरक तत्वों की मौजूदगी के वातावरण में क्या ये कार्यक्रम टिक पाएँगे, मुझे नहीं पता; मैं यह अनुमान लगाऊँगा कि सम्भवतः वे न टिक पाएँ।

इन कार्यक्रमों के लिए किसी विशाल बन्द परिसर वाले ग्रामीण स्थानों पर ही निर्भर रहना जरूरी नहीं है; शहरी और ग्रामीण स्कूलों की अलग-अलग बाधाओं - शहरी स्कूलों में आम तौर पर प्राकृतिक और हरे-भरे स्थानों की कमी; और शहरी तथा ग्रामीण, दोनों ही तरह के स्कूलों में सीमित स्रोतों और सीमित प्रेरणा वाले अत्यधिक बोझ से दबे हुए शिक्षकों का होना -

को समझकर इन कार्यक्रमों को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जा सकता है। मुझे डर है कि मैंने यहाँ जिस कार्यक्रम की रूपरेखा रखी है, उसे सम्भ्रान्तवादी, तथा गरीबी और शिक्षा की आधारभूत सुविधाओं के अभाव की वास्तविक स्थिति में अनुपयुक्त बताकर खारिज किया जा सकता है। हालाँकि अपर्याप्त संसाधनों के समतामूलक वितरण में शामिल चुनौतियों से इन्कार करना असम्भव है, पर असल समस्या इन संसाधनों के घटते जाने की प्रकृति है। शहरी और समृद्ध लोग लगातार एक उत्तरोत्तर बढ़ती हुई विनाशकारी खपत में संलग्न हैं जिसके परिणाम-स्वरूप पर्यावरण में ज़बरदस्त कूड़ा और विषमता फैल रही है। इस मोड़ पर, मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूँ कि जिस पर्यावरण शिक्षा का हम प्रस्ताव सामने रख रहे हैं वह इन महत्वपूर्ण संसाधनों को वहाँ रखती है जहाँ उन्हें होना चाहिए - चर्चा के केन्द्र में - और लोग हमारे अनुभव का लाभ उठा सकते हैं और इस शिक्षा को अपने स्कूलों के अनुरूप लागू कर सकते हैं, भले ही वे स्कूल किसी भी स्थान पर हों, इससे फर्क नहीं पड़ता कि स्कूल समृद्ध हैं या गरीब। समस्याएँ हम सबकी भूमि, सबके जीवन और पृथ्वी के भविष्य की हैं।

पर्यावरण विज्ञान को सभी आयुवर्गों के लिए एक अनिवार्य विषय के रूप में लागू करना एक अच्छी शुरुआत है, पर एक परीक्षा वाले विषय में तब्दील करना इसे निष्फल और अमूर्त बना देता है, जो अक्सर ही अपने नज़दीकी परिवेश के घनिष्ठ अवलोकन से अलग हो जाता है। पाठ्यक्रम के इस पहलू की पूरी पड़ताल करके उसमें सुधार करने की ज़रूरत है और इसमें ज़्यादा विषयवस्तु की बजाय प्रकृति के साथ सम्पर्क के ज़्यादा अवसरों को शामिल करने की ज़रूरत है। नई पर्यावरण शिक्षा में, हमें कागज़ के पुनर्चक्रण और स्कूल परिसर में सौर पैनलों को लगाने से आगे बढ़ने की ज़रूरत है। प्रकृति को समझने के लिए उसके साथ अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करने की ज़रूरत होती है, और उसके साथ यह नए सिरे से बनाया गया रिश्ता दुनिया को देखने के, और शायद, उसमें रहने के नए रास्ते खोल सकता है।

तेजस्वी शिवानन्दः सेंटर फॉर लर्निंग, बंगलुरु में बड़े बच्चों को जीवविज्ञान, सांख्यिकी और पर्यावरण विज्ञान पढ़ाते हैं। युनिवर्सिटी ऑफ बैंगलोर और टीआईएफआर, मुम्बई से विज्ञान की पढ़ाई की है। नेच्युरल हिस्ट्री, संगीत और घूमना इनके विशेष पसन्द के क्षेत्र हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः भरत त्रिपाठीः पत्रकारिता की पढ़ाई। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। गाज़ियाबाद में निवास।

सभी चित्रः बोस्की जैनः सिम्बायोसिस ग्राफिक्स एंड डिज़ाइन कॉलेज, पुणे से ग्राफिक्स डिज़ाइन में स्नातक। एकलव्य के डिज़ाइन समूह के साथ जुड़ी हैं। भोपाल में निवास।